दैनिक जागरण

अंधेरे की शिकायत करने से बेहतर है मोमबत्ती जलाना

शालीनता से परहेज

लगता है राहुल गांधी ने ठान लिया है कि वह रह-रह कर बेतुके बयान देते ही रहेंगे। चंद दिनों पहले जब उन्होंने भारत को दुष्कर्म की राजधानी कहा था तब भी उनकी आलोचना हुई थी, लेकिन उनकी सेहत पर कोई असर नहीं पड़ा। अब उन्होंने मेक इन इंडिया का हवाला देते हुए यह कह दिया कि आज जहां देखो वहीं रेप इन इंडिया नजर आता है। यह एक अभद्र टिप्पणी है। उनके जैसे नेता को ऐसी टिप्पणी शोभा नहीं देती, लेकिन शायद वह यह मान बैठे हैं कि अमर्यादित भाषा ही उनकी राजनीति को धार देती है। हैरानी नहीं कि उनके सलाहकार भी ऐसा ही सोचते हों, क्योंकि यह पहली बार नहीं जब राहुल गांधी ने अमर्यादित भाषा का इस्तेमाल किया हो। उनकी भाषा किस तरह बिगड़ती चली जा रही है, यह सर्जिकल स्ट्राइक के समय खून की दलाली वाले बयान से भी साबित हुआ था और फिर आम चुनाव के वक्त उनकी ओर से उछाले गए चौकीदार चोर है नारे से भी। इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि वह प्रधानमंत्री के लिए बोलता है, देखता है जैसी शब्दावली इस्तेमाल करने में संकोच नहीं करते। वैसे तो अपने देश में ऐसे नेताओं की कमी नहीं जो राजनीतिक शिष्टाचार का परिचय देने से इन्कार करते हैं, लेकिन इसकी उम्मीद नहीं की जाती कि यही काम राहुल गांधी भी करें और वह भी बिना किसी शर्म-संकोच। आखिर वह अपने नेताओं और कार्यकर्ताओं को क्या संदेश दे रहे हैं?

यदि राहुल गांधी अपनी राजनीति से कोई उम्मीद नहीं जगा पा रहे तो उसका एक बड़ा कारण उनके छिछले बयान भी हैं। उन्होंने रेप इन इंडिया वाले अपने बयान के लिए माफी मांगने से इस तरह इन्कार किया, मानो कोई बहादुरी का काम कर दिखाया हो। उन्होंने माफी मांगने से इन्कार करते हुए यह आड़ ली कि एक समय नरेंद्र मोदी ने भी दिल्ली के बारे में ऐसा ही कुछ कहा था। क्या राहुल गांधी यह कहना चाह रहे हैं कि वह मोदी का अनुसरण करना पसंद कर रहे हैं? सवाल यह भी है कि क्या कांग्रेस शासित राज्य और खासकर मध्य प्रदेश, राजस्थान उनकी ओर से परिभाषित किए गए रेप इन इंडिया का हिस्सा नहीं रह गए हैं? निःसंदेह दुष्कर्म के मामले गहन चिंता का विषय हैं, लेकिन यह कहना सस्ती राजनीति के अलावा और कुछ नहीं कि दल विशेष के कारण ऐसा हो रहा है। एक गंभीर सामाजिक समस्या पर ऐसी सतही सोच हैरान करती है। आखिर राहुल गांधी यह कैसे भूल सकते हैं कि निर्भया कांड किसके शासनकाल में हुआ था? उन्हें यह भी पता होना चाहिए कि दुष्कर्म की घटनाएं किसी राज्य विशेष तक सीमित नहीं हैं।

आत्मचिंतन जरूरी

महज छह माह पूर्व इसी बंगाल में भाजपा ने 18 लोकसभा सीटें जीतकर सबको चौंका दिया था, लेकिन विधानसभा उपचुनाव के नतीजे ने साफ कर दिया है कि बंगाल में मुख्यमंत्री ममता बनर्जी का जादू कम नहीं हुआ है। विधानसभा उपचुनाव में खड़गपुर सदर, कालियागंज और करीमपुर, तीनों ही सीटों पर भाजपा को हार का मुंह देखना पड़ा, जिसके बाद अब प्रदेश भाजपा नेतृत्व को आत्मचिंतन करने की जरूरत है। जिस तरह से भाजपा में पिछले कुछ समय में गुटबाजी देखने को मिली है और नेताओं ने बयान दिए हैं, उसे लोगों ने सही तरीके से नहीं लिया है। शायद इसी का नतीजा है कि तृणमूल कांग्रेस को तीनों सीटों पर जीत मिली है। बंगाल भाजपा नेतृत्व को गंभीरता से समीक्षा करनी होगी कि आखिर चूक कहां हुई? इस तरह की हार से पार्टी कार्यकर्ताओं का मनोबल गिरता है, जैसा कि लोकसभा चुनाव में मिली हार के बाद तृणमूल कार्यकर्ताओं पर असर दिखा था। विस उपचुनाव में मिली जीत ने तृणमूल को नई संजीवनी दे दी है। भाजपा को तृणमूल से बेहतर रणनीति और कार्यों के साथ आगे बढ़ना होगा, नहीं तो आने वाले समय में स्थिति और खराब हो सकती है। यही वजह है कि इस हार के बाद सबसे पहले प्रदेश भाजपा उपाध्यक्ष एवं नेताजी सुभाष चंद्र बोस के परपोते चंद्र कुमार बोस ने संगठन की कमजोरी और खामियों को लेकर बात करना शुरू किया है। उनका कहना है कि भाजपा को अब राज्य विशेष के लिए योजना बनानी चाहिए, क्योंकि स्वामी विवेकानंद और नेताजी सुभाष चंद्र बोस की धरती पर अखिल भारतीय रणनीति कारगर साबित नहीं होगी। बोस ने एनआरसी को मुख्य चुनावी मुद्दा बनाए जाने पर भी सवाल उठाया है। उनका कहना है कि बंगाल के लिए एनआरसी कोई मुद्दा नहीं है। फिलहाल इस पर शोर मचाने की जरूरत नहीं थी। केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने भी कहा था कि पहले नागरिक संशोधन कानून बनेगा, उसके बाद ही बंगाल में एनआरसी लागू होगा। यह घुसपैठियों को पहचानने की प्रक्रिया है। यह भारत के नागरिकों के लिए चिंता का विषय नहीं है। बोस ने कहा कि मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने एनआरसी के बारे में लोगों को भ्रमित कर राजनीतिक फायदा उठाया। यही नहीं, बोस ने यह भी कहा कि बंगाल भाजपा का शुद्धिकरण होना चाहिए। शुद्धिकरण से उनका तात्पर्य सांगठनिक चुनाव को सही तरीके से कराया जाना और पार्टी में योग्य व्यक्तियों को शामिल करना था।

जिस तरह से भाजपा में पिछले कुछ समय में गुटबाजी देखने को मिली है और नेताओं ने बयान दिए हैं, उसे लोगों ने सही तरीके से नहीं लिया है

डर के माहौल की हकीकत

बैजयंत जय पांडा

सरकार के बारे में यह कहना किसी विडंबना से कम नहीं कि वह आलोचना नहीं सुन सकती या फिर वह असहिष्णु हो गई है

कुछ दिन पहले मुंबई में एक आर्थिक जलसा हुआ। वहां देश के एक जानेमाने उद्योगपति ने गृहमंत्री अमित शाह से देश में कथित तौर पर डर के माहौल को लेकर सवाल किया। उनका यह सवाल पूछना था कि मीडिया से लेकर सोशल मीडिया में इस मसले पर तूफान खड़ा हो गया। उसके केंद्र में वही मसला था कि मौजूदा मोदी सरकार के दौर में देश में कथित तौर पर खौफ का माहौल पसरा हुआ है जहां सरकार को किसी भी सूरत में अपनी आलोचना स्वीकार्य नहीं। इस वाकये और बीते पांच वर्षों के दौरान इससे मिलते-जुलते मामलों के बीच एक खास पहलू देखने को मिला और वह यह कि जब भी ऐसे सवाल किए गए तब सैकड़ों लोग इसके साक्षी रहे। तमाम लोगों के बीच पूछे गए इन सवालों को देश-विदेश में टेलीविजन प्रसारण के दौरान लाखों-करोड़ों दर्शकों ने देखा भी। वास्तव में गाहे-बगाहे ऐसे आरोप बेहद आम रहे हैं जिन पर मीडिया मुख्य रूप से टीवी परिचर्चाओं, अखबारी स्तंभों, साहित्यिक आयोजनों, आर्थिक सम्मेलनों एवं संगोष्ठियों में खासी चर्चा हुई।

जिन देशों में तानाशाह सरकारें होती हैं वहां कभी ऐसे सवाल नहीं किए जा सकते। ऐसे देशों या सरकारों में जहां लोग वाकई डरे होते हैं वहां ऐसी बातें चोरी-छिपे दबे स्वरों में और अमूमन बंद दरवाजों के भीतर होती हैं। वहां अक्सर छोटे-छोटे समूह ही ऐसी चर्चा करते हैं। वे खुलेआम मुखर होकर अपनी आवाज नहीं उठाते। मीडिया और यहां तक कि किसी सम्मेलन के मंच से तो ऐसी बातें उठाने का सवाल ही नहीं उठता।

भारत में आखिर कब ऐसी तानाशाह-अधिनायक वादी सरकार रही है? यदि इस सवाल का जवाब ढूंढ़ेंगे तब आपकी तलाश आपातकाल के दौर पर जाकर ठहरेगी। उसी खौफनाक दौर में ऐसे डर की अभिव्यक्ति हो सकती थी। तब भयाक्रांत लोग मीडिया में या सार्वजनिक तौर पर नहीं, बल्कि निजी बातचीत में ही ऐसी भावनाएं व्यक्त करते थे। तब मीडिया पर भी सरकारी सेंसर की तलवार लटकी हुई थी। मौजूदा भारत सरकार के बारे में ऐसी बातें कहना न केवल अतिशयोक्ति होगी, बल्कि यह वास्तविकता को अपनी सुविधानुसार तोड़ने-मरोड़ने का मामला अधिक प्रतीत होता है, फिर भी जो लोग ऐसे डर की बात कर रहे हैं उसे समझना एवं उसकी पड़ताल करना बहुत जरूरी है। सबसे पहली बात तो यह कि यह पूरी तरह से शहरी कुलीन वर्ग के दिमाग की उपज है। अगर आप इन कुलीन बस्तियों से दूर निकलकर आम लोगों की तरफ जाएंगे तो ऐसे सुर नहीं सुनाई पड़ेंगे। ऐसा नहीं है कि आम लोगों की बड़ी आबादी वाली इन बस्तियों में किसी तरह का कोई खतरा महसूस नहीं होता। यहां असल में लोगों को सुरक्षा खासतौर से परिवार की बच्चियों और महिलाओं की परवाह ज्यादा परेशान करती है कि रात में अकेले चलने पर वे किसी मुसीबत में न पड़ जाएं। उनकी सुरक्षा उनके लिए गंभीर चिंता का विषय है। इसके उलट अगर उनसे मोदी सरकार को लेकर किसी सामान्य डर की बात को लेकर सवाल किया जाएगा तो जवाब यकीनन 'नहीं' में आएगा। आम शहरी नागरिकों में भी आपको कभी ऐसी चर्चा सुनने को नहीं मिलेगी। ऐसे में बड़ा सवाल यही उठता है कि आखिर शहरी कुलीन वर्ग के कुछ लोग डर को लेकर ऐसा दावा क्यों कर रहे हैं? इनमें कई चोटी के उद्योगपति भी शामिल हैं। असल में ये उस जमात के लोग हैं जिनके सामने पूरे का पूरा ढांचा ही बदल रहा है जो उन्हें बहुत असहज करने वाला है। यदि आप इस पर विचार करते हैं तो शहरी कुलीन वर्ग के शीर्ष पर कायम ऐसे लोगों में डर की भावना को बखूबी समझ सकते हैं। दशकों से वे उन असमान्य चीजों को सामान्य मानकर खुद को उनके मुताबिक ढालते और तरक्की करते आए हैं, लेकिन अब उनकी वह दुनिया एकदम बदल रही है।

मैं इसे विस्तार से समझाता हूं। यह कुलीन तबका भ्रष्टाचार जैसी बुराई को भी 'सामान्य' मानकर उसे उचित ठहराता रहा है। चाहे सामान्य स्वीकृतियों या मंजूरियों के मामले हों या फिर प्रमुख राष्ट्रीय नीतियों को अपने मुताबिक बदलवाने के लिए भारी-भरकम रकम की घूस देने के उन्हें ऐसे तौर-तरीकों से कोई एतराज नहीं रहा। अपनी काली करतूतों के लिए उन्हें कभी जिम्मेदार नहीं ठहराया गया। सरकारी विभागों के साथ उनकी साठगांठ चलती रही। इसके दम पर ही वे फलते-फूलते रहे। इससे उन्हें खास किस्म का आत्मविश्वास मिलता था जो अब बदलती व्यवस्था के दौर में ध्वस्त हो गया है।

आज कई बुनियादी बदलाव हो रहे हैं। सख्त कायदे-कानून बनाए जा रहे हैं। उन्हें कड़ाई से लागू भी किया जा रहा है। उन्हें तोड़ना-मरोड़ना भी मुश्किल है। इस बदलते और आकार लेते नए भारत में जहां ये नियम लागू हो रहे हैं, वहां उनके लिए वास्तविकता से ताल मिलाना बहुत कठिन साबित हो रहा है।

यह खासतौर से उन विशिष्ट कारोबारी जनों पर बहुत भारी पड़ रहा है जो पहले तंत्र को अपने हिसाब से हांकने में सक्षम थे। अपना जुगाड़ बैठाने में नाकामी उनके लिए दुखदायी साबित हो रही है। वे दशकों से जिस परिपाटी के अभ्यस्त थे, उसमें व्यापक बदलाव उन पर भारी पड़ रहा है। ऐसे तंत्र के भरभराकर गिरने से उनके आत्मविश्वास पर भी गहरी चोट हुई है जिसका अस्थाई रूप से असर शायद उनके निवेश पर भी पड़ रहा हो। उनके लिए ये स्थितियां बदल सकती हैं, यदि वे उन नए परिवर्तन से ताल मिला लें, जो सबके लिए समान आधार उपलब्ध कराती हैं।

पुरानी शैली के कारोबारियों में अधिक व्यावहारिक उद्यमी उस पुराने दौर एवं परिपाटी की वापसी को लेकर कोई उम्मीद नहीं कर रहे। वे तंत्र को प्रभावित करने वाले पुराने चलन से पीछा छुड़ाकर वास्तव में नए तौर-तरीकों को अपनाने के प्रयास में हैं। वे उन प्रक्रियागत परिवर्तन के साथ स्वयं को समायोजित कर रहे हैं जो केवल उन्हें नहीं, बल्कि सभी के लिए बेहतर कारोबारी परिवेश उपलब्ध कराए।

सरकार के बारे में यह कहना किसी विडंबना से कम नहीं कि वह आलोचना नहीं सुन सकती या वह असहिष्णु है। खासतौर से तब जब गृहमंत्री ने उनके प्रश्न का बहुत विनम्रतापूर्वक और आश्वस्त करने वाला जवाब दिया हो, मगर मीडिया में सवाल को जितनी प्रमुखता दी गई, उतनी उनके जवाब को नहीं मिली।

भारत में विभिन्न प्रकाशक एवं प्रसारक समूहों के रूप में भारतीय मीडिया के मुखरित स्वर देश के समृद्ध लोकतंत्र के जीवंत प्रमाण हैं। वास्तव में किसी भी सार्वजनिक मंच, टेलीविजन, सोशल मीडिया से लेकर सड़कों तक बिना किसी डर के सरकार पर किसी भी तरह की टिप्पणी करना इसकी जीती-जागती मिसाल है कि भारतीय लोकतंत्र किस स्तर पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है।

(लेखक भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

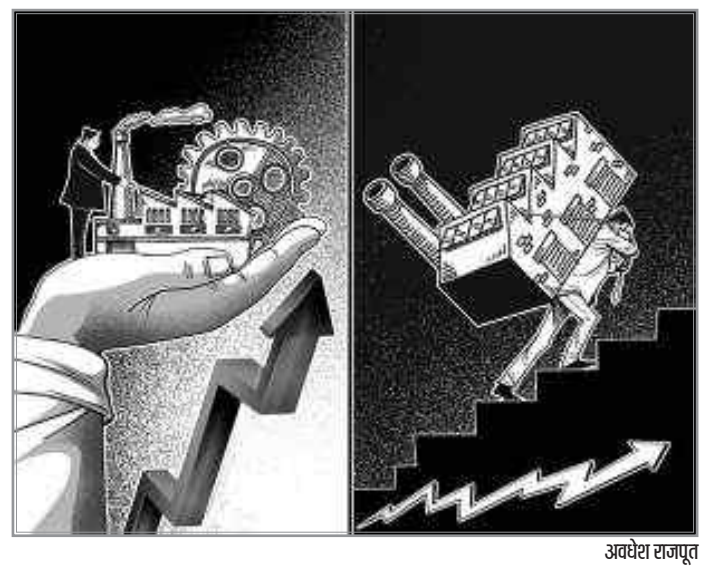

अवधेश राजपूत

प्याज संकट की दास्तान

गोपाल कृष्ण गांधी

प्याज हर इंसान की जेब के अनुकूल होता है। उसे सस्ता भोजन कहा जा सकता है, लेकिन...सामान्य दिनों में

कच्चा प्याज अगर चार टुकड़ों में छुरी से काटा या हथेली से तोड़ा जाए तो नमक-मिर्च के साथ रोटी का जो संग करता है, उसका क्या बयान करें! रूखी-सूखी हो रोटी या फिर गरम फुल्का, बाजरे के आटे के साथ मिले गेहूं के आटे से बनी हो या फिर मकई की हो, प्याज अगर उसको मिल जाए तो वाह...रोटी रोटी न रहकर कुछ और ही बन जाती है। वह एक पकवान नहीं, अनुभव बन जाती है। गेहूं में धरती की महक होती है, प्याज में जड़ी-बूटियों का सार। दोनों का मिश्रण खेती और बागवानी का पूरक बन जाता है और फिर उन पर नमक का छिड़काव...आह, कृषि पर खनिज की इनायत। ऊपर से लाल मिर्च की झीनी परत, आह-आह, इनायत पर मेहरबानी। अगर प्याज को सिरका मिल जाए तो फिर बात ही कुछ और हो जाती है। प्याज पर एक लालिमा आ जाती है, जैसे उसको कुछ शरम लगी हो खुद की खूबियों पर। और फिर वह कुछ नर्म होकर जल्द रोटी का स्पर्श चाहता है। प्याज पकने पर भी हर पकवान की जान बन जाता है। गरीब की रसोई में कच्चा-रूप, रईस की रसोई में पका हुआ प्याज। प्याज सबका दोस्त है, हर थाली का बंधु। प्याज हर इंसान की जेब के अनुकूल होता है। उसे सस्ता भोजन कहा जा सकता है, लेकिन...सामान्य दिनों में।

तब नहीं (जैसे अब) जब प्याज का दाम उछलता-कूदता आसमान तक पहुंच जाता है। असामयिक वर्षा की वजह से खासकर कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात में जहां प्याज का भारी उत्पादन है, वहां उसकी उपज को इंतहा नुकसान पहुंचा है। यह संकट बार-बार आता है। 2013 में प्याज-समस्या आई थी। राजनीति परखने वाले कहेंगे, उस संकट का असर 2014 के चुनाव पर पड़ा था।

मुझे यकीन है कि इस बार सरकार संकट को काबू में ले आएगी। हालांकि चुनौती जटिल है। ऐसे समय में हमारा, प्याज-रसिकों का, कर्तव्य क्या बनता है? प्याज के दाम जब तक सामान्य न हो जाएं, तब तक क्या हम प्याज से दूर रहें? नहीं! कम मात्रा में सही, अपनी आर्थिक क्षमता के मुताबिक, थोड़ा-बहुत प्याज अपनी रसोई में लाते रहें, प्याज-संस्कृति के, प्याज दुकानदार के और प्याज किसान के हित में। गलती उन दोनों की नहीं है। गलती मौसम की बेपरवाही की है। एक और जरूरी बात। प्याज के जमाखोरों को अपने किए का फायदा नहीं मिलने देना चाहिए। प्याज के दाम का हिस्सा किसान को जाना चाहिए। दास्तान-ए-प्याज के चार हिस्से हैं- आसमान, किसान, दुकान, पकवान। जब आसमान मेहरबान न हो और बारिश कम हो या फिर असामयिक या बहुत हो जाए तो यह फसल बेकार हो जाती है, किसान लाचार हो जाता है, दुकान मायूस हो जाती है व पकवान फीके पड़ जाते हैं।

प्याज की मुसीबतें आज खबरों में हैं। समाधान नहीं मिल रहा, पर आज नहीं तो कल, मिलेगा जरूर। प्याज हमसे इतना जुड़ जो गया है। इस बीच में वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने कह दिया कि वह प्याज नहीं खातीं, न ही उनका परिवार। उनके कथन की आलोचना हुई है। उनके कथन में आहार का गर्व देखा गया। अपने खुद के और प्याज के रिश्ते के बारे में वह खामोश रहकर प्याज संकट पर मात्र अपना बयान रखतीं तो इस आलोचना से बची रहतीं। खैर! यह घटना भी प्याज संकट का एक हिस्सा है, लेकिन उससे दो सबक सीखने को मिलते हैं। हर एक की अपनी आहार-प्रणाली होती है। हर एक की अपनी आहार पसंदगी-नापसंदगी होती है। हर एक को यह मुबारक। उनको लेकर हंसना या हंसी करना शोभनीय नहीं। जैन कंद-मूल नहीं खाते। प्याज ही नहीं, आलू, शलजम, चुकंदर भी नहीं। उनका मानना है कि जब यह पौधे जमीन से उखाड़े जाते हैं तब छोटे जीव-जंतुओं को हानि पहुंचती है। इतना ही नहीं, वे यह भी मानते हैं कि प्याज एक कली होने के नाते, उखाड़े जाने पर भी जीवित रहता है। इस विचार को हमें आदर भाव से लेना चाहिए। अगर किसी की प्याज-प्रियता पर मजाक उचित नहीं तो फिर वैसे ही किसी और की प्याज-अप्रियता का भी अपना स्थान है।

प्याज की किल्लत, उसकी कीमत, उसकी महक, उसका स्वाद, उसका दाम, उसकी चाहत, उसकी नापसंदगी, उसका परहेज, उसके निषेध, उसकी परंपराएं भारत के बहु-आयामी स्वरूप की परिचायक हैं। प्याज भारत की खुशहाली और उसकी गरीबी, दोनों का परिचायक है। प्याज दरअसल एक साज है, उसमें नाज न भी हो, हमें उसके चरित्र का अहसास होना चाहिए।

(लेखक पूर्व राजनयिक एवं राज्यपाल हैं)

response@jagran.com

तथ्य-कथ्य | रसोई गैस कनेक्शन की घरों तक पहुंच

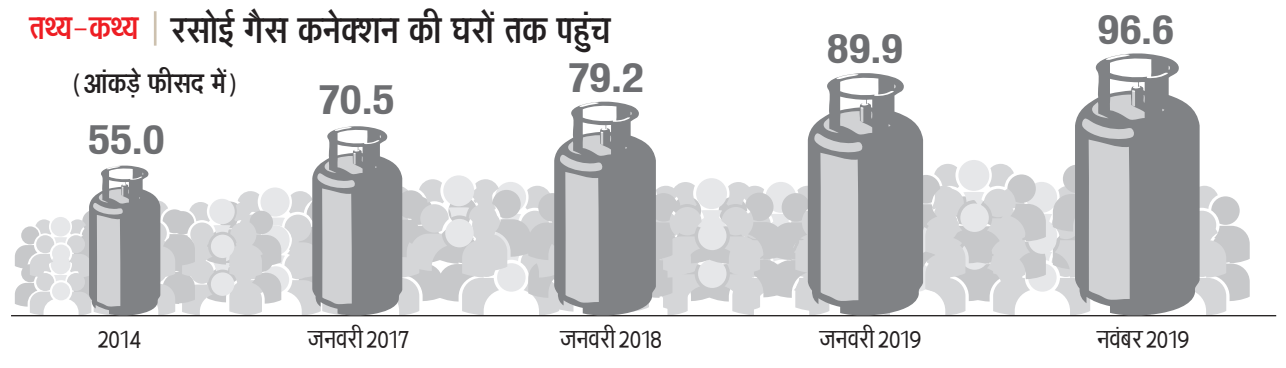

ऊर्जा

उम्मीद

आप कभी-कभार सोचते होंगे कि आप इतना दबाव, इतनी परेशानियां, इतनी असफलताएं बर्दाश्त नहीं कर सकते। आपको लगता है कि आपने सब कुछ कर लिया, लेकिन हालात काबू से बाहर हैं। इसके लिए कतई जरूरी नहीं कि आप तुरंत कुछ करें ही। नहीं सूझ रहा है तो रुक जाने में भी कोई बुराई नहीं। नई आशा और उम्मीदों की धूप, देर-सबेर खुद भी पहुंच जाएगी। ताजी हवा व रोशनी आ सके, इसके लिए जरूरी है कि आप अपने दिमाग की खिड़कियों को खुला रखें। उन पर भय, आशंका की कड़वी धूल को जमने न दें।

मन भी छोटा करने की जरूरत नहीं। जीवन तो हर पल नया भी हो रहा है और पुराना भी। हम जिस पल में नए हो जाते हैं, उस पल से हमारी जिंदगी नई होने लगती है। चुनौतियां रास्ते की रुकावटें नहीं हैं, रास्ता ही हैं। संघर्ष एवं असफलता केवल निराश ही नहीं करते, बहुत कुछ सिखाते भी हैं। नाउम्मीद में ही उम्मीद छिपी होती है। बीती बातों से सीख कर ही उबरा जा सकता है। मनोविज्ञानी कहते हैं कि हम इसी जाल में फंस कर रह जाते हैं कि या तो सब कुछ चाहिए या कुछ भी नहीं। और यह सोच हमारा संतुलन बिगाड़ देती है। कई बार कम रोशनी में ही चीजें गहराई से समझ आती हैं। धुंधलापन नई कहानियों को जन्म देता है। दिमाग साफ हो और हम धुंध का मजा लेने के लिए तैयार हों तो कहानियां अच्छी बनती हैं।सफलता सिर पर जल्दी चढ़ती है और असफलता दिल पर। जीत के नशे में झूमते हुए को हार नहीं दिखती और हारे हुए को जीत की कोई उम्मीद नजर नहीं आती, लेकिन असली जीत उनकी होती है जो सफलता को सिर नहीं चढ़ने देते व हार को दिल से नहीं लगाते। बैडमिंटन खिलाड़ी पीवी सिंधु कहती हैं, 'हार हो या जीत, मैं अपना सौ प्रतिशत देने पर ध्यान देती हूं। जो करती हूं, पूरे मन से करती हूं।' आपकी सफलता का दरवाजा भी खुलेगा जरूर, आप वांछित पाएंगे जरूर, कभी-कभी दरवाजा जब ज्यादा मजबूती से बंद होता है तो उसे खोलने के प्रयत्न भी उतनी ही मजबूती से करने होते हैं। तो झुंझलाहट क्यों?

ललित गर्ग

फिनलैंड से क्या सीखे भारत

मनीषा सिंह

पश्चिमी देशों के समाज इतने खुले हैं कि वहां राजनीति में पति या पत्नी में कोई एक आगे बढ़ता है तो दूसरा पीछे नहीं छूट जाता

फिनलैंड में 34 वर्षीय सना मारिन प्रधानमंत्री बनी हैं। वह दुनिया में सबसे कम उम्र में इस पद पर पहुंचने वाली महिला हैं। पांच पार्टियों के मध्य-वामपंथी गठबंधन का नेतृत्व कर रहीं और हाल तक फिनलैंड की परिवहन मंत्री रहीं सना को प्रधानमंत्री एंटी रिना के इस्तीफे के बाद सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी ने प्रधानमंत्री पद के लिए चुना है। जिन पांच पार्टियों के गठबंधन की वह प्रमुख हैं, उन सभी पार्टियों की अध्यक्ष महिलाएं हैं। हाल में डाक हड़ताल से निपटने के मामले में गठबंधन का विश्वास खो देने के बाद एंटी रिना के इस्तीफे से वे स्थितियां बनीं जिनके चलते सना मारिन को देश के सर्वोच्च पद पर आसीन होने का मौका मिला है। स्कैंडिनेवियन देशों में सना तीसरी महिला प्रधानमंत्री हैं। न्यूजीलैंड की पीएम जेसिंडा अर्डर्न हैं व यूक्रेन में ओलेक्सी होंचरुक राष्ट्राध्यक्ष हैं।

फिनलैंड दुनिया का पहला देश है जिसने महिलाओं को 1907 में संसद भेजा था। यह यूरोप का पहला देश है जिसने 1906 में महिलाओं को वोट करने का अधिकार दिया। फिनलैंड में 2000 में पहली महिला राष्ट्रपति बनी थीं और 2003 में पहली महिला प्रधानमंत्री। इस साल फिनलैंड में 93 सीटों पर महिलाएं जीतकर संसद पहुंची हैं। 200 सीटों वाली संसद में 47 प्रतिशत महिलाएं हैं, लेकिन दुनिया के सबसे खुशहाल देश फिनलैंड के इन उदाहरणों से हम क्या सीखें। यूं भारत के पक्ष में एक बात जाती है। वह यह कि भारत उन पांच देशों में शामिल है, जहां पर एक महिला (इंदिरा गांधी) ने एक दशक से अधिक समय तक शासन किया, लेकिन कुछ अपवादों (जयललिता, मायावती, ममता, सुषमा स्वराज आदि) को छोड़कर भारतीय राजनीति में ज्यादातर स्वतंत्र महिलाओं और राजनेताओं की पत्नियों का पदार्पण किसी वंशवादी मजबूरी में ही हुआ है। ऐसी स्थिति में उन महिलाओं को वह सामाजिक स्वीकार्यता और हैसियत नहीं मिल सकी, जिससे वे एक योग्य लीडर के रूप में स्थापित हो पातीं। अक्सर ऐसे मामलों में उन्हें अपने पति या किसी पुरुष राजनेता की सिर्फ छाया बनकर रहने को मजबूर होना पड़ा है। ये हालात तब हैं जब अतीत में कई महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता के उदाहरण हैं। इन उदाहरणों को देखकर कहा जा सकता है कि राजनेताओं की पत्नियां सिर्फ अपने पत्नी धर्म का निर्वहन कर रही हैं और पति की छाया में रहने को अपनी सफलता मानती हैं।

भारत से उलट यूरोपीय-अमेरिकी आदि देशों के समाज इतने खुले और विकसित हैं कि वहां राजनीति में पति या पत्नी में कोई एक आगे बढ़ता है तो दूसरा पीछे नहीं छूट जाता। वहां यह सामंजस्य इसीलिए बन पाता है, क्योंकि वहां महिलाओं को राजनीति में किसी से हीन नहीं समझा जाता है और उन्हें आगे बढ़ने का पर्याप्त अवसर मुहैया कराया जाता है। काश, राजनीतिक और सार्वजनिक स्तर पर बड़ी भूमिकाएं निभाने वाले पुरुष देख पाएं कि फिनलैंड की सना मारिन परिवार की तरह ही हमारे यहां भी महिलाएं देश संभालने के योग्य हैं, बशर्ते देश का पुरुष समाज उन्हें ये भूमिकाएं निभाने दे।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

सही सुझाव

'स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा बने रामकथा' शीर्षक से लिखे अपने लेख में जगमोहन सिंह राजपूत ने भारतवर्ष के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का चित्र प्रस्तुत किया है। यह सत्य है कि प्राचीन भारत की 'स्वीकार्यता की संस्कृति' समय-समय पर भारतीय समाज को संबल प्रदान करती रही है, जिसके सहारे व्यक्ति तथा समाज अपने राष्ट्रीय कर्तव्य का निर्वाह करते रहे हैं। लेखक द्वारा वर्णित देश की प्राथमिकताएं जिनमें शिक्षा, कौशल विकास, जनसंख्या, रोजगार, गरीबी, स्वास्थ्य, सुरक्षा, भुखमरी तथा कुपोषण आदि ज्वलंत समस्याएं हैं। आज अनेक क्षेत्रों में शिखरोन्मुख नए भारत की संकल्पना इन समस्याओं से निजात पाए बिना अधूरी रहेगी। निश्चित रूप से रामायण-महाभारत तथा भारतीय परंपरा के गौरव ग्रंथ व्यक्ति निर्माण के महत्वपूर्ण स्रोत रहे हैं, जिनकी समय-समय पर राजनीतिक तथा वैचारिक कारणों से उपेक्षा की गई। जबकि इन ग्रंथों में व्यक्ति तथा समाज की पूर्णता के विविध आयाम विद्यमान हैं। तथाकथित आधुनिकता की होड़ में हमने उन्हें भुला दिया। वर्तमान परिदृश्य में भारतवर्ष के गौरवशाली तथा महत्वपूर्ण साहित्य, इतिहास तथा परंपराओं और उनकी शिक्षाओं की पाठ्यक्रमों में नितांत आवश्यकता है। इनके सहारे एक ऐसे व्यक्ति, समाज का निर्माण हो सकेगा जो मानवता के कल्याण के लिए चिंतित तथा प्रयासरत होगा।

डॉ. वेदप्रकाश, हंसराज कॉलेज, दिल्ली

पृथ्वी को बचाएं, नहीं तो...

स्पेन की राजधानी मेड्रिड में कॉप 25 सम्मेलन से जलवायु परिवर्तन प्रदर्शन सूचकांक की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के 57 देश जो सबसे ज्यादा कार्बन उगल रहे थे, उनमें से 21 देश उसे कम करने के लिए ईमानदारी से सार्थक प्रयास करते दिख रहे हैं। वे गैरपरंपरागत उर्जा श्रोतों जैसे सौर उर्जा और पवन उर्जा से अपना काम चलाने का सद् प्रयास कर रहे हैं। इन सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाले 10 देशों में स्वीडन, डेनमार्क और भारत के साथ मोरक्को जैसे छोटे देश ने भी अपना उल्लेखनीय प्रदर्शन किया है। इस रिपोर्ट में दुनिया के अमीर और ताकतवर समझे जाने वाले देशों यथा आस्ट्रेलिया, सऊदी अरब और अमेरिका जैसे देश वैश्विक पर्यावरण संतुलन के लिए कार्बन उत्सर्जन कम करने के मामले में अपना गैरजिम्मेदाराना रवैया अख्तियार किए हुए हैं। ये देश अगर यह सोचते हैं कि वैश्विक पर्यावरण के ग्लोबल वार्मिंग से होने वाले दुष्प्रभाव से वे अछूते रहेंगे, तो यह उनकी बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि अमेरिका के ही कुछ वैज्ञानिकों ने समूचे विश्व को चेतावनी देते हुए यह बताया है कि अत्यधिक कार्बन उत्सर्जन से पैदा ग्लोबल वार्मिंग का इस दुनिया पर दुष्प्रभाव पड़ना शुरू हो गया है। वैश्विक पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति को अगर सुधारने का समय से यथेष्ठ प्रयास नहीं किया गया, तो स्थिति बहुत भयावह हो सकती है। इससे कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेगा। अतः हम समस्त मानवों का यह परम् कर्तव्य है कि हम अपनी भरण-पोषण करने वाली पृथ्वी को बचाने के लिए वे सारे कर्तव्य करें, जो उसे और अधिक प्रदूषित न करें।

निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद

प्रशंसनीय आचरण

भारत में जन्मे अर्थशास्त्री अभिजीत बनर्जी जब स्टॉकहोम में नोबेल पुरस्कार ग्रहण कर रहे थे, तो उन्होंने पारंपरिक वेशभूषा काले रंग का बंद गले का कोट तथा कुर्ते के साथ सुनहरे बॉर्डर वाली सफेद धोती पहन कर रखी थी। संयुक्त रूप से उनकी पत्नी भी इस नोबेल से नवाजी गई थीं। एस्था डुफ्लो जो फ्रांसीसी हैं, उन्होंने भी इस शुभ अवसर पर नीली साड़ी और लाल ब्लाउज पहनकर माथे पर बिंदी लगा रखी थी। आज भारत में एक वर्ग ऐसा भी है, जो यज्ञोपवीत, कलावा, तिलक एवं चोटी के धारण करने को पुरातन एवं पिछड़ापन मानता है। ऐसे लोगों के लिए बनर्जी का उपरोक्त आचरण उत्तर देता प्रतीत होता है। आज हम अपनी परंपरा व संस्कृति से बढ़ते पाश्चात्यीकरण के कारण विमुख होते जा रहे हैं, और पश्चिम कभी विश्व गुरु रहे भारत में शांति और संतोष खोजता घूम रहा है। मैकाले की शिक्षा पद्धति ने हममें हमारे पुरातन संस्कृति, इतिहास व परंपरा की चूलें हिलाकर रख दी हैं। हमें किसी की भी अच्छी चीजों को आत्मसात करना चाहिए। रुढ़ीवादी नहीं बनना चाहिए, लेकिन परंपराएं, जो वैज्ञानिक, सामाजिक तथा समय एवं सांस्कृतिक कसौटी पर खरी उतरी हों, उन्हें त्यागना नहीं चाहिए। ऐसे में बनर्जी का यह आचरण प्रशंसनीय तथा धारणीय है।

डा. मनोज कुमार शर्मा, स्याना

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।